International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2017; Page No. 25-29

रमेश चन्द्र शाह के उपन्यासों का वर्गीकरण

किरन

शोधछात्रा, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बागेश्वर, उत्तराखण्ड, भारत।

प्रस्तावना

उपन्यास लेखन एक कला है।अत्यन्त कुशल उपन्यासकार भी अपनी कलाकृति में जीवन की अनुभूति ही करता है। कथानक के रेखाचित्र में जीवन को बांधना ही उसकी कला कुशलता है। जीवन एक सतत प्रवाहमय सरिता है। अतः ये रेखाएँ सिमिटिती–बढ़ती रहती है, धूमिल–चमकीली भी होती रहती हैं– इन्हीं से जीवन–प्रयोजन भी रसमय होता है। अतः उपन्यासकार का क्षेत्र और शिल्प दोनों ही व्यापक होते हैं। हमें कथानक का रूप स्थापित करना पड़ता है, एक आकृति हमें बनानी पड़ती है। हम मात्र कहानी कहकर उपन्यास को न तो रोचक बनाते हैं और नहीं उपादेय। उपन्यास को जीवन्त बनाने के लिए रूप वैशिष्ट्य होना आवश्यक है।

पद्मश्री रमेश चन्द्र शाह का जन्म उत्तराखण्ड की सुरम्य सांस्कृतिक नगरी, अल्मोड़ा में बैशाख शुक्लपक्ष त्रयोदशी, मई 1937 में हुआ। साहित्य की हर विधा उपन्यास, कहानी संग्रह, निबन्ध, संस्मरण, यात्रा–वृत्तान्त, डायरी, कविता संग्रह आदि में अपनी लेखनी चलाई है। डॉ. रमेश चन्द्र शाह ने अभी तक कुल ग्यारह उपन्यास 'गोबर गणेश' 1978, 'किस्सा गुलाम' 1986, 'पूर्वापर' 1990, 'आखिरी दिन' 1992, 'पुनर्वास' 1995, 'आप कहीं नहीं रहते विभूतिबाबू' 2001, 'सफेद परदे पर' 2006, 'कमबख्त इस मोड़ पर' 2007, 'विनायक' 2010, 'असबाब–ए–वीरानी' 2011, 'कथा सनातन' 2012 आदि लिखे हैं। डॉ. शाह का जीवनानुभव काफी व्यापक है। उनके उपन्यासों में विस्तृत फलक का सफल निर्वाह हुआ है। शाह जी के उपन्यास का क्षेत्र काफी बड़ा है। डॉ. शाह के उपन्यासों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

i) आत्मकथात्मक

जब कोई साहित्यकार अपने व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन की अनुभूति सहज, स्वाभाविक परिवेश को लेकर उसको परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करता है तो वह आत्म कथात्मक रूप है। प्रायः हर साहित्य विधा में मानवीय प्रेरणाओं का अध्ययन शामिल होता है। आत्म कथात्मक साहित्य में लेखक द्वारा स्वयं देखे व भोगे गए जीवन की झलकियाँ तथा उनकी व्याख्या प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होती है। उनमें लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं को दोबारा अपनी कल्पना में जाते हुए स्मृतियों के सहारे बखूबी काट–छाँट कर इस प्रकार पिरोने का प्रयास करता है। आत्म कथात्मक उपन्यास आत्मकथा नहीं है, लेखक को अपने आप से दूर रखकर निजी अनुभवों को रोचक–विश्वसनीय ढंग से रचना पड़ता है। आत्म विवेचन और आत्म विश्लेषण के दृष्टिकोण से लेखक को अपनी बीती जिन्दगी के विभिन्न उतार–चढ़ाव को एक व्यापक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत प्रस्तुत करना होता है। इसके अतिरिक्त आत्म कथात्मक उपन्यास में जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ भावों, विचारों, चिन्तन, मनन, स्वाध्याय, दर्शन, पर्यवेक्षण आदि का समावेश भी सहज ही हो जाता है।

डॉ. शाह जी का उपन्यास 'गोबर गणेश' एक आत्मकथात्मक उपन्यास है ही, इसके अलावा 'कम्बख्त इस मोड़ पर', 'आप कहीं नहीं रहते विभूतिबाबू', 'सफेद परदे पर', भी डॉ. शाह के आत्मकथात्मक उपन्यास के अन्तर्गत आते हैं। पिछले दशकों में–खासकर अज्ञेय की पहल के बाद से ऐसे कई उपन्यास हिन्दी में लिखे गए, जिनकी अन्तर्वस्तु बालक की जिन्दगी को आधार बनाकर रची गई है। पश्चिमी कथा–साहित्य में ऐसी अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं जैसे –'डिकेंस का डेविड कॉपरफील्ड' तथा 'मार्सेल पूस्त की महान् कथाकृति'।

गोबर गणेश डॉ. शाह का पहला और आत्मकथात्मक उपन्यास है जिसके केन्द्र में एक बालक विनायक है। इसमें लेखक ने विनायक की मानसिकता के उन सूत्रों को तलाशने की कोशिश की है जो जीवन में चरित्र का निर्धारण–नियामक रूप में संचालन करते हैं। यह अज्ञेय की औपन्यासिक कृति 'शेखरः एक जीवनी' की याद दिलाती है।

"रमेश चन्द्र शाह के 'गोबर गणेश' का उपन्यास रूप भी किसी हद तक इसी तरह का है। यह एक कवि–उपन्यासकार का उपन्यास है। इसी कारण इसमें बाल–मन का जो चित्रण है, वह अज्ञेय और नरेश मेहता के उपन्यासों के चित्रण के अधिक निकट कहा जा सकता है। किन्तु सामाजिक परिवेश का जीवन्त–नाटकीय चित्रण इसमें एक अतिरिक्त आयाम जोड़ता है। इसके केन्द्र में भी एक बालक ही है। इस उपन्यास का फलक बचपन में ही परवर्ती विकसित मानसिकता के सूत्रों को पहचानने की कोशिश की है, जो एक व्यक्ति के वयस्क होने पर उसके जीवन और चरित्र के नियामक हो जाते हैं।"[1]

'गोबर गणेश' एक आत्मकथात्मक उपन्यास होने के साथ–साथ निश्चय ही एक सशक्त कथाकृति है, परन्तु कहानी की बनावट में उलझ कर रह जाने से बचने की कोशिश भी जरूरी है।"[2] 'गोबर गणेश' उपन्यास केवल आत्मकथा ही नहीं, बल्कि हमारी पीढ़ी के पहाड़ियों और प्रवासी पहाड़ियों की संवेदना के विकास का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज भी है।

ii) सामाजिक

किसी भी समाज की संरचना अनेक तत्वों से मिलकर होती है। इन तत्वों की विशेषताएं सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करती हैं। समाज साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। सामाजिक विकास की गति के साथ ही साथ साहित्य का भी विकास होता है। हिन्दी उपन्यासों का उदय जिस सामाजिक परिस्थिति में हुआ उसके विकास एवं परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत पर्याप्त रही जिससे साहित्य की प्रगति का भी उसी गति से होना अनिवार्य हो जाता है।

डॉ. शाह ने अपने उपन्यासों में समाज की जीवन रीति, स्वभाव, संस्कार, विचार पद्धति विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक बुराइयों, उनकी कुण्ठाओं एवं दमित इच्छाओं का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं मार्मिक शैली में किया है। वे किसी मत–वाद से ग्रस्त नहीं हैं, अपितु जीवन के यथार्थ रूप को सहज प्रेरणा से प्रस्तुत करते हैं। पात्रों के चरित्र–चित्रण की सूक्ष्मता, वातावरण की समीपता शैली की मर्म–स्पर्शिता एवं व्यंजकता आदि उनके उपन्यासों की अतिरिक्त विशेषताएँ हैं। 'गोबर गणेश', 'किस्सा गुलाम', 'पुनर्वास', 'कम्बख्त इस मोड़ पर', 'सफेद परदे पर' आदि उपन्यासों में सामाजिक

यथार्थ का चित्रण सन्तुलित एवं तटस्थ दृष्टि से किया है।

डॉ. शाह के उपन्यासो में समाज की परम्परा एवं रुढ़िवादी जीवन शैली या यूं कहें कि उस समय जैसा था डॉ. शाह ने अपने उपन्यासों में वही पिरोया है। उनके उपन्यासों में कहीं–कहीं समाज एवं जन मानस को ज्ञान मार्ग एवं प्रेरणा देने वाले मनीषियों, विचारकों एवं चिन्तकों का दर्शन समाहित है। वहीं दूसरी ओर पहाड़ की विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न आजीविका की समस्या का भी समावेश है। जहाँ एक ओर धरा की सुन्दरता हिमालय का गौरव पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र कुमाऊँ की पहाड़ियों का जिक्र है। वहीं लोगों की आम बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार की व्याकुलता भी शाह जी के उपन्यासों में देखी जाती है। लेखक अपनी कलम के माध्यम से समाज को एक ताने–बाने में पिरोने का प्रयास तो बदस्तूर जारी रखता है, परन्तु इसी के साथ लेखक यह भी महसूस करता है कि हमारे जैसे कलमकार और होते तो अच्छा होता। जो हैं भी, वह थोडे ही हैं। उनमें भी पलायनवादी विचारधारा प्रबल होती देखी जाती है।

डॉ. शाह के उपन्यास पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश के इर्द–गिर्द हैं। समाज में हो रही प्रत्येक गतिविधियों को डॉ. शाह ने उजागर किया है। जिस प्रकार का जीवन हम जीते हैं, वहीं उनके उपन्यासों में मिलता है। डॉ. शाह के उपन्यासों को पढ़कर ऐसा लगता है, जैसे हम उनके उपन्यासों को प्रत्यक्ष रूप से जी रहे हैं। लेखक के नायक– विनायक ने आत्मकथा शैली में स्वयं अपना और अपने परिवार का वर्णन ऐसे कौशल के साथ किया है कि उससे बहुत से परिवारों का नक्शा उभरने लगता है।

डॉ. रमेश चन्द्र शाह के अधिकांश उपन्यास ग्रामीण जीवन तथा ग्रामीण सामाजिक परिवेश पर आधारित हैं। समाज में अतिव्याप्त सुरा जैसी भयंकर लत पर प्रवृष्ट करते हुए लेखक ने अपने सटीक विचार रखते हुए उल्लेख किया है कि– "कहने को ड्राई एरिया है। मगर दवाई के नाम पर इस सुरा ने सारी कसर निकाल दी है। जमाना बहुत बदल गया है भाई साहब। गाँवों के हालात तो शहर से भी ज्यादा खराब है। घर के घर उजाड़ दिए इस सुरा ने।"[3]

डॉ. शाह ने अपने उपन्यासों में समाज में व्याप्त विषमता एवं वर्ण व्यवस्था को रोचक ढंग से उजागर किया है। डॉ. शाह का उपन्यास 'गोबर गणेश' में "नारायण डूम है" वाला प्रसंग इस बात को बहुत सजीव ढंग से उजागर करता है कि– कम उम्र के बालक को वर्ण–व्यवस्था से प्रसूत सामाजिक विषमता का पहला अहसास किस तरह होता है। आमतौर पर पहाड़ का समाज साम्प्रदायिकता के जहर से अछूता रहा है। किन्तु संस्कार के स्तर पर यह विषमता किस तरह उपस्थित रहती है और संस्कार और संवेदना के बीच कैसी कशमकश इस तथ्य से निष्पन्न होती है। यह 'गोबर गणेश' उपन्यास के ''अन्नजल" खण्ड में उपन्यासकार ने बड़ी ही सजगता एवं कौशल के साथ समाहित किया है।

रचना के प्रति रचनाकार की प्रतिबद्धता जुड़ी रहती है। रचना के प्रति रचनाकार की प्रतिबद्धता क्या होती है? रचना रचनाकार का अपने समाज से कैसा और क्या सम्बन्ध होता है? यह देखने के लिए गढ़े–गढ़ाए साँचों को नहीं उन रचनाओं को ही आँख के सामने रखना चाहिए जिसकी रचनात्मकता और सामाजिक मूल्य समय ने स्वयं प्रमाणित कर दी है। प्रेम चन्द्र रेणु, अज्ञेय, जैनेन्द्र, कौशिक एवं निर्मल वर्मा इत्यादि की रचनाओं में समाज का जो संवेदन है, उसके प्रमाण की आवश्यकता प्रतीत नहीं रहती। शाह भी मानते हैं कि– संतुलन रचना से सिद्ध होता है वक्ताओं से नहीं। अन्याय का मुकाबला करने की शक्ति साहित्य में है, राजनीतिक प्रतिबद्धता में नहीं। किसी भी तरह की प्रतिबद्धता के अस्वीकार से और रचना की अपनी अन्दरूनी ताकत से आती है। फिर रचना सामाजिक कर्म की ऐवजी नहीं है। कर्महीन लोग ही ऐसी उपेक्षाओं का बोझ कहानी या उपन्यास पर डालते हैं।

iii) ऐतिहासिक

ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता केवल उस देश और काल के सुन्दर और आकर्षक चित्रण मात्र में नहीं है। वह अपने युग को असीम और निर्वाध काल के साथ जोड़ता है और उसका अपना एक निश्चित् प्रतिपाद्य भी होता है। उसके अभाव में कोई कृति महत्व प्राप्त नहीं कर सकती। इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इनमें इतिहास आज के पाठक को स्वयं से बहुत दूर नहीं लगता। इहलोक और अध्यात्म दो विरोधी अवधारणाएँ नहीं रह जाती। आरण्यक जीवन और नागरिक जीवन एक दूसरे से अपरिचित नहीं रह जाते।

हमारा ऐतिहासिक उपन्यास एक लंबी यात्रा तय कर आया है और कुछ ऐसे निष्कर्षों पर पहुंच रहा है, जो हमारे समाज के लिए सिद्धांत मात्र नहीं हैं। वह उनका दैनन्दिन जीवन है। वह उनको एक समग्र जीवन दर्शन दे रहा है, जो केवल इहलौकिकता का वर्णन करने वाले सामाजिक–सांसारिक उपन्यास नहीं दे सकते। हाँ! पाठक से वह थोड़ी सात्विक बुद्धि की अपेक्षा भी करता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि– इस देश को अपनी स्वतंत्रता के लिए राजनीति के दलदल में धंसने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम अपना सात्विक चरित्र प्राप्त कर लेंगे तो हमारी समस्याओं का समाधान अपने आप ही हो जाएगा।

रमेश चन्द्र शाह के उपन्यासों में कहीं न कहीं ऐतिहासिकता की झलक मिलती है। हर कोई महापुरुषों को अपने देश के समाज और संस्कृति को समझने के लिए इतिहास के पन्ने पलटने ही पड़ते है। इतिहास को जानकर ही वर्तमान और भविष्य को संवारा जाता है। शाह के उपन्यास आखिरी दिन में कुछ इतिहास के अंश दिखते है। उन्होंने कश्मीर श्रीनगर के विभिन्न स्थानों एवं पर्वतों का ऐतिहासिक वर्णन किया है–"यहाँ इसी पर्वत पर वसुगुप्त नामक महान् आत्मज्ञानी गुरू का निवास था। वसुगुप्त उस समय प्रचलित हीनतर दर्शन–सिद्धान्तों से सत्य की अपव्याख्याओं से अत्यन्त विक्षुब्ध थे।"[4]

अल्मोड़ा नगरी के इतिहास की एक झलक यहाँ देखने को मिलती है– "पाँच सौ बरस पहले एक ब्राह्मण महाराष्ट्र से आके इस उजाड़ में अपना घर बसाता है। पाँच सौ बरस बाद यहाँ का एक लड़का महाराष्ट्र में जाके अपना सिक्का जमाता है। इतना ही नहीं वहाँ से एक मराठी ब्राह्मण कन्या को भी लाता है। दीनानाथ निश्चय ही मराठी ब्राह्मण नहीं किन्तु क्षत्रिय वैश्य या शूद्र ही सही, क्या यह सर्वथा उनके पुरखे भी वहीं कहीं महाराष्ट्र या गुजरात या राजस्थान से ही आकर यहाँ बसे हों ? अब यूं विशुद्ध आदिवासी यहाँ कौन है? सभी तो बाहर से आकर यहाँ बसे हैं। अरे जिन्होंने यह नगरी बसाई, वे चन्द राजा भी तो खुद बाहर से ही तो आए थे। यहाँ के तो वे थे नहीं।"[5]

iv) धार्मिक

धर्म विश्वासजनित व्यापक शब्द है। यह असीम अदृश्य सत्ता के प्रति श्रद्धा–भक्ति से आवेष्टि है। वह अदृश्य सत्ता शक्ति जो हर कठिनाईयों से उबरने में सहायक होती है, उसमें विश्वास ही धर्म है। धर्मप्राण देश भारतवर्ष में विद्वानों, चिन्तकों, मनीषियों ने धर्म की अनेक प्रकार से व्याख्या की है तथा धर्म की सार्वभौमिकता को स्वीकार किया है। चाहे जाति विशेष की सभ्यता, संस्कृति, आचार–विचार, रहन–सहन, रीति–रिवाज, जीवन–प्रणाली, राजनीति, दर्शन हो, सभी में धर्म का अबाध प्रवेश प्रलक्षित होता है।

रमेश चन्द्र शाह के उपन्यासों में धार्मिक जीवन के पुट दिखाई देते हैं। धर्म के प्रति आस्था और श्रद्धा इनके उपन्यासों में कूट–कूट कर भरी है। पहाड़ हो या शहरी हर भारतीय जन मानस धार्मिकता से ओत–प्रोत होता है। क्षेत्रीय देवी–देवता पर्व त्योहार, मेले, लोक–कला, लोक–नृत्य आदि किसी ना किसी रूप में धर्म से प्रभावित रहते हैं। पर्वतीय परिवेश की बात करें तो शायद ही कोई

ऐसा स्थान रहा हो या कोई पर्वत शिखर जहाँ किसी न किसी मन्दिर की स्थापना न हुई हो।

शाह जी के उपन्यासों में कुमाऊँ के लोक देवताओं के प्रति असीम आस्था का भाव प्रकट होता है यहाँ के प्रमुख लोक देवता– कसार देवी, चित्तई गोलू, गंगा नाथ, सत्यनाथ, भोलानाथ, गोरखनाथ, जागेश्वर आदि क्षेत्रीय देवी देवताओं की झलक भी इनके उपन्यासों में मिलती है। खजुराहो को भी मात कर देने वाली काम–क्रीड़ाएं यहाँ पत्थरों पर खुदी हुई नन्दा देवी के भव्य मन्दिरों एवं कसार देवी, चितई गोलू आदि पौराणिक धार्मिक स्थलों का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है।

शाह के उपन्यासों में गाँधी जी, तिलक तथा अरविन्द के धर्मबुद्धि एवं उससे निकलने वाली स्वराज की अवधारणा का उल्लेख मिलता है। गाँधी जी का सर्वधर्म समभाव का ईसाई, इस्लामी बौद्ध एवं हिन्दू सभी विश्व धर्मों की इसी बूते पर सार्वभौमिक अनुभूतियों एवं सर्वसार्वभौमिक विचारों की व्याख्या की गई है।

v) राजनीतिक

वर्तमान समय में राजनीति समाज का एक प्रमुख अंग है। समाज निर्माण में व व्यक्ति के उत्थान–पतन में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है आज तक विशेष रूप से व्यावहारिक राजनीति और शासनकाल में नीति–निपुणता को ही राजनीति कहा जाता है। इसी राजनीतिक परिवेश में ही युगदृष्टा साहित्यकार के व्यक्तित्व का विकास होता है और उसका प्रतिबिम्ब उसकी साहित्यिक रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ किसी भी व्यक्ति, समूह या समुदाय के चिंतन एवं कार्यप्रणाली दोनों को प्रभावित करती हैं। मनुष्य शून्य में जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। सामाजिक व राजनीतिक वातावरण में रहकर ही उसके जीवन का निर्वाह होता है। अतः राजनीतिक परिस्थितियाँ, यथा–किसी देश की शासन प्रणाली, शासनतंत्र का रूप, व्यक्ति का शासन के साथ सम्बन्ध आदि कुल मिलाकर राजनीतिक व्यवस्था का संचालन जिस रूप में होता है, वह व्यक्ति और राजनीति के आपसी सम्बन्धों को अवश्यमेव प्रभावित करता है। मौजूदा हालात पर टिप्पणी करते हुए डॉ. शाह ने कम से कम शब्दों का प्रयोग कर बहुत कुछ कह दिया है –"अंग्रेजों से हमने उनके सारे ऐब तो जमके सीखे। मगर उनकी राजनैतिक बुद्धिमत्ता से कुछ नहीं सीखा। हिन्दुस्तान का इतिहास गवाह है कि हमें अपनी राजनैतिक बेवकूफी और लापरवाही का बहुत महंगा मोल चुकाना पड़ा है।"[6]

राजनीतिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार का परिवर्तन चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, हमारे जीवन पर दूरगामी प्रभाव छोड़ता है। राजनीतिक सत्ता के गलियारों में चलने वाली गतिविधियाँ भी व्यक्ति के जीवन को निश्चित रूप से प्रभावित करती हैं। साहित्य चूंकि समाज का दर्पण है अतः किसी समाज विशेष में चलने वाली राजनैतिक उठापटक, राजनीतिक षड़यन्त्र, क्रान्ति इत्यादि का प्रभाव हमें साहित्यकार की रचनाओं पर भी देखने को मिलती है। व्यक्ति और समाज के लिए यह राजनीतिक परिवर्तन, शांतिपूर्ण तरीके से हिंसात्मक ढंग से सकारात्मक अथवा नकारात्मक भी हो सकता है।

राजनीतिज्ञों के लिए सत्ता संघर्ष किसी भी तरीके से षडयंत्रों के द्वारा, धन–बल के द्वारा या बाहुबल के द्वारा शासन–सत्ता पर काबिज होना है। जनसेवा का भाव उसमें कहीं भी नहीं रहता। राजनीति आज इन राजनीतिज्ञों के लिए अपने ऊँचे–ऊँचे सपनों को पूरा करने का एक मार्ग बन गया है। सत्ता की प्राप्ति के लिए कोई भी अपराध करना, राजनीतिज्ञों के लिए बहुत आसान बात है।

वर्तमान समय की राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार अराजकता आदि के विषरूपी बीज तो पहले ही बोए जा चुके थे। लेकिन उस समय मूल्यों–सिद्धान्तों की बात तो की जाती थी। अब तो इसका मुखौटा भी बेशर्मी से उतार कर फेंक दिया गया है। इस अराजक एवं भ्रष्टाचार रूपी बीमारी ने महामारी का रूप धारण कर लिया है। इसका अब कोई इलाज नहीं है। "आज हम जो दृश्य देख रहे हैं अराजक आपाधापी का मूल्यमूढ़ता का सब कुछ स्वयं संस्कृति के राजनीतिकीकरण का राजनैतिक संस्कृति जैसे भी बनी थी। हमारी अधूरी टूटी मिलावट उसके भी अद्यः पतन का वह दृश्य आज अभूतपूर्व जैसा लगता है। पर है नहीं। पहले कहने को, दिखाने के दाँतों की तरह ही कम से कम मूल्यों–सिद्धान्तों की बात तो की जाती थी। अब तो वह मुखौटा भी बेशर्मी से उतार फेंक दिया गया है।"[7]

vi) सांस्कृतिक

किसी समाज या देश की रीति–रिवाज, रहन–सहन, खानपान, वेशभूषा, आचार–विचार तथा पर्व–उत्सव एवं त्यौहार, कला–कौशल एवं मनोरंजन– लोकनृत्यों, लोकगीतों, लोकगाथाओं तथा लोककलाओं की अभिव्यक्ति ही संस्कृति कहलाती है। एक साहित्यकार जिस संस्कृति के बीच पला–बड़ा होता है, उसी समाज की संस्कृति की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं के माध्यम से करता है। संस्कृति की एक परिभाषा यहाँ पर दृष्टव्य है– "परम्परा से प्राप्त किसी मानव समूह की निरन्तर उन्नत मानसिक अवस्था, उत्कृष्ट वैचारिक प्रक्रिया, व्यावहारिक शिष्टता, आचारगत पवित्रता, सौन्दर्याभिरुचि आदि की परिष्कृत, कलात्मक तथा सामूहिक अभिव्यक्ति ही संस्कृति है।"[8]

डॉ. रमेश चन्द्र शाह के उपन्यासों में उत्तराखण्ड की संस्कृति का गहन चित्रण हुआ है। अपनी मूल संस्कृति से लोग जिस तरह कटते जा रहे है उसके प्रति एक पीड़ामय सजगता भी लेखक में दिखाई देती है। जिसे वह कभी गंभीरता से तो कभी व्यंग्य विनोद के माध्यम से प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए शाह के उपन्यास 'विनायक' में देखा जा सकता है– "किस कदर सारे रंग–ढंग बदल चुके हैं लोग–बागों के। फिसलन आ गई है, आपसी रिश्तों में। जरा इन लड़कों की बातें सुनो तब पता चलेगा। तुमने या मैंने कभी घर के भीतर हिन्दी नहीं झाड़ी होगी। पहाड़ी ही बोलते थे आपस में। अब एक–एक घर के भीतर झाँक के देखो एक भी बच्चा या लड़का ऐसा नहीं मिलेगा जो पहाड़ी बोल सकता हो। माँ–बाप भी अपने बच्चों के साथ पहाड़ी नहीं बोलना चाहते। वह सोचते हैं कि पहाड़ी बोलके पिछड़े–गँवार लगेंगे। अब पहाड़ी बोलने वाले ही नहीं बचेंगे तो क्या फर्क रह जाएगा पहाड़ और मैदान के बीच।"[9]

शाह जी के उपन्यास 'विनायक' में कुमाउंनी संस्कृति की झलक बड़े रोचक ढंग से दिखाई देती है। उन्होंने होली, शिवरात्रि जन्माष्टमी, खतडुवा और नन्दादेवी मेला और नवरात्रि एवं रामलीला आदि पर्व त्यौहारों का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया है। होली के मन भावक एवं पक्के राग–रागनियों और रामलीला के राग गाए जाते थे। उसका मार्मिक वर्णन किया है। पहाड़ी व्यंजन–ओगल की रोटी और चुए के लड्डू, कद्दू का रायता, आलू के गुटके आदि का वर्णन भी शाह जी ने अपने उपन्यास में किया है। पहाड़ का सबसे रोचक और आनंददायक रिवाज है– रात को धुनी जलाकर गाना–बजाना। लोग धूम–धाम से नाचते और गाते हैं। जाड़ों के समय लोग एक जगह इकट्ठा होकर आग जलाते हैं जिसे धुनी कहते हैं सभी लोग उस धूनी के चारों ओर खड़े होकर आग का आनन्द लेते हैं।

शाह जी कहते हैं कि "सच्चाई यह है कि मनुष्य की नियति को अलग कर और मानव एकता को लेकर जितना बड़ा आदर्श और जितना बड़ा सपना भारत की संस्कृति ने देखा है– न केवल अपनी बुनियाद में और शुरुआत में बल्कि ठेठ बीसवीं सदी में भी अरविन्द और गाँधी सरीखे अपने प्रामाणिक प्रतिनिधियों के माध्यम से, उतना

ऊँचा आदर्श– वह भी अनुभूति के आधार पर, मात्र बौद्धिक अवधारणाओं की शक्ल में नहीं–वैसा विश्व की किसी सभ्यता ने नहीं देखा।"[10]

vii) दार्शनिक

डॉ. शाह ने उपन्यास के माध्यम से भारतीय धर्म दर्शन के न जाने कितने अनुतरित पहलू सामने आते हैं। शाह की यह कथाकृति मानव के उस तात्विक पहलू का चित्रण करती है जिसके मूल में सांसारिकता की उपेक्षा के कई रूप जुड़े हैं।

मानव हमेशा से ही सांसारिक ऐश्वर्यों के भोग और इसके वैराग्य के परस्पर विपरीत जीवन मूल्यों के बीच झूलता रहा है। सांसारिकता के जाल में अलग–थलग रहने में तटस्थ आत्म–दर्शन तथा साक्षी–भाव की जो सिद्धि हो सकती है, उसी की उपज शाह के 'पूर्वापर' उपन्यास के नायक वंशी उर्फ बाबाजी में चित्रित है ।

''दर्शन तो सभी ज्ञान–विज्ञान का स्रोत है कसौटी है। पर उस रूप में उसकी पढ़ाई अपने यहाँ होती ही कहाँ है ? काश मैं कम से कम यही कर पाता। एक जीवन अनुशासन की तरह दर्शन की एकदम नई परिकल्पना को साकार कर पाता। चिन्तन मन की पारम्परिक भारतीय विशेषताओं का नया उन्मीलन घटित हो सके ऐसी संभावनाएं खोजता। यह एक टैम्परेरी फेज है और मुझे वापस फिर वहीं लौटना होगा दार्शनिक चिन्तन में।"[11]

शाह जी अपने उपन्यास के जरिए दार्शनिक चिन्तन प्रकट करते हुए ज्ञान और आत्म–ज्ञान का मतलब समझाया है। ज्ञान के जरिए आत्म–ज्ञान होने पर परमात्मा और जीव के बीच कोई भेद नहीं रह जाता है। आत्म ज्ञान के जरिए साक्षात् परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं। लेखक कहते हैं कि– "आत्मा और परमात्मा में जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। यानी दोनों के बीच कोई ऐसी दूरी नहीं है। जिसे पाटा न जा सके। ज्ञान वह है जो आदमी को असलियत का पता दे, उसे उसके सच्चे स्वरूप की पहचान करा दे यानी साक्षात् अनुभव करा दे आत्मा यानी परम आत्मा का।"[12]

viii) यथार्थवादी

उपन्यास लेखन की प्रेरणा जीवन के यथार्थ से उद्भूत और अनुभूति के द्वन्द से निर्मित बिम्बों से जब शब्दों में चित्रित होने लगती है तब मात्र घटनाएँ ही केन्द्र बिन्दु में नहीं होती, घटनाओं के कर्त्ता के रूप में पात्र, उसका चरित्र और देशकाल वातावरण आदि उसके साक्ष्य के स्वरूप अभिव्यक्ति पाते हैं। इसमें से एक भी स्थिति के अभाव में जीवन–जगत का यथार्थ और लेखक की अनुभूति का कोई अर्थ नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य जगत के यथार्थ में जीता है, उसकी अनुभूति भी करता है किन्तु वह उपन्यासकार नहीं हो सकता। उसमें अनुभूति की तीव्रता, कल्पना का बिम्बात्मक सत्य जब घटना के यथार्थ से जुड़ जाता है तो उपन्यास ही लिखा जाएगा और कुछ नहीं।

उपन्यास यथार्थवादी साहित्यिक विधा है। एक अच्छा साहित्यकार संवेदना, गहराई और विस्तार के साथ जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करता है और फिर उससे प्राप्त अपने अनुभवों को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करता है। मेरा यह मानना है कि आज के उपन्यासों का मुख्य लक्ष्य मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और उसके माध्यम से मानव मन की व्याख्या करना है।

डॉ. शाह के उपन्यासों में यथार्थता का चित्रण बड़ी खूबी से किया गया है। उन्हें जो अनुभूति हुई जिसे उन्होंने महसूस किया जिस समाज में उन्होंने अपने बचपन से सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया उन्होंने अपने उपन्यासों में उन्ही घटनाओं को रचना के रूप में पिरो दिया। डॉ. शाह के उपन्यासों में कोई बनावटीपन नहीं दिखाई देता है। जो उन्होंने देखा ठीक वैसा अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। डॉ. शाह के उपन्यासों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक परिवेश या परिदृश्य हमारे साथ घटित हो रहे हैं।

लेखक समाज का अन्तःकरण तथा अपने युग की चेतना का सबसे सजग बिन्दु होता है। साहित्यिक हलचल केवल समाज का आईना भर नहीं होती वह हमेशा आईने से कुछ अधिक होती है। जो सृजनात्मक साहित्य की प्रगतिशील अवधियाँ होती हैं। इस गतिशील अवधियों के इर्द–गिर्द जो समय होता है उसी की रचनात्मक सक्रियता के बारे में कहा जा सकता है कि वह समाज का आईना है। इस दृष्टि से देखा जाए तो आज लिखे जा रहे साहित्य का अधिकांश सामाजिक राजनीतिक गतिरोध का आईना है। जैसा हमने देखा इतना सही और साफ आईना शायद ही हमारा साहित्य कभी बना हो।

शाह जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन तथा समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है। शाह जी का 'गोबर गणेश' इसका पुख्ता उदाहरण है। 'गोबर गणेश' उपन्यास में ग्रामीण वातावरण एवं सामाजिक संस्कृति का वही चित्रण किया हो जो हम वास्तविक रूप में अनुभव करते हैं। विनायक जो 'गोबर गणेश' का पात्र है। उसी के माध्यम से लेखक का जिया–भोगा सब कुछ संवेदनशील पाठकों को खुद अपने जीवनानुभुति के करीब लगता है।

उपन्यासकार शाह ने बड़ी विश्वसनीय सूक्ष्मता से परिवेश के उन अनेक सूत्रों का अन्वेषण किया है जो लेखक के कवि स्वभाव की विभिन्न परतें खोलने में योग देते हैं। जैसे– परिवार, स्कूल, आस पड़ोस के सभी साथी सामाजिक सम्बन्ध रीति–रिवाज आदि। परन्तु इन सब में मुख्य है–परिवार उसमें अलग–अलग व्यक्तियों की स्थिति उनके विशेष स्वभाव रुचियाँ मान्यताएं निजी और सामाजिक आचरण व्यवहार तथा उनके आपसी सम्बन्ध प्रमुख है। इन सभी परिवारों का यथार्थ चित्रण बड़े सजीव ढंग से डॉ. शाह के उपन्यासों में मिलता है।

ix) आँचलिक

स्वतन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आँचलिक उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आँचलिक उपन्यासों में प्रवाह कम गतिशील होता है। इनका उद्देश्य आँचल विशेष के वातावरण की विशिष्टता का चित्रण होता है। आँचलिक कृतियों की प्रकृति, भाषा, रीति–रिवाज सब मिलाकर अपने आप में ही उद्देश्य बन जाते है। उनका आत्मीय विवरण ही ऐसा रंगीन हो जाता है कि यथार्थवाद विषमता ओझल हो जाती है।

डॉ. शाह जी कुमाऊँ अँचल में पले–बढ़े हैं। पहाड़ से उनका विशेष लगाव है। उनके उपन्यासों में पहाड़ी आँचल की विशेष छटा झलकना स्वाभाविक है। इनके उपन्यासों में कुमाऊँ के समाज में उपयुक्त तत्वों के साथ उदात्त सांस्कृतिक तत्वों का समन्वय भी देखने को मिलता है।

शाह जी ने अपने उपन्यासों में कुमाऊँ के अल्मोड़ा नैनीताल तथा रानीखेत, गरमपानी आदि स्थानों का चित्रण किया है। किन्तु उनकी विशेष रुचि अपनी जन्मभूमि अल्मोड़ा तथा आस पास के गाँव अंचल में रहे हैं। शाह जी के लगभग सभी उपन्यासों तथा रचनाओं में उनकी पैतृक भूमि अल्मोड़ा तथा रानीखेत का चित्रण मिलता है। ग्रामीण अंचल से शाह को कितना प्रेम एवं लगाव है। इस बात से स्पष्ट होता है– "बचपन के ऐसे संगी–साथी थे, ऐसा देवता–थान था, ऐसी धरती और ऐसा आसमान और ऐसे जिंदादिल हीरा–मोती सरीखे लोग, ऐसे मेले–कौतुक, ऐसी सदाबहार लीला... जो अभी तक, हाँ, चालीस बरसों के बनवास के बावजूद मेंरे भीतर ज्यों–की–त्यों जिंदा है।"[13]

विनायक गोबर गणेश तथा पुनर्वास जैसे उपन्यासों में तो पूर्ण रूप सें कुमाऊँ आँचल का चित्रण किया है। वहाँ की प्रकृति का सुन्दर चित्रण करते हुए डॉ. शाह कहते हैं– "कितना सुन्दर दृश्य दिखता है इस छोर से ! चारों ओर वृक्षों से घिरा हुआ और स्याहीदेवी के

ठीक सामने। नीचे कोसी की उजली बाँक कितनी सुन्दर लगती है। एकान्त का एकान्त और बाजार भी बहुत दूर नहीं। सीधी और पक्की सड़क इसे बाजार से जोड़ती है।”[14]

पहाड़ से डॉ. शाह का गहरा लगाव है। अपने आँचल में पले बढ़े जहाँ का पानी पिया जिस मिट्टी का अन्न खाया उसके प्रति प्रेम और अपने पूर्वजों के प्रति आस्था और श्रद्धा इस वाक्य से झलकता है– ”पहाड़ नहीं छूटेगा। जहाँ का अन्न–जल पाकर उगे–पनपे, वहाँ भी हमारा कायदे का एक घर होना चाहिए। वहाँ भी मेरी जिन्दगी भर की कमाई का कुछ हिस्सा लगाना है। तभी पुरखों की आत्मा को शान्ति मिलेगी।”[15]

इस अनंतपुरी अर्थात् अल्मोड़ा के समूचे लैंडस्केप का सबसे ऊँचा पहाड़, स्याही देवी का डॉ. शाह ने बड़े रोचक ढंग से चित्रण किया है। इनके उपन्यासों मे अमृत के समान पहाड़ी फलों– काफल एवं हिसालू आदि का जिक्र भी मिलता है। पहाड़ी पर चढ़ते हुए ”हर दस कदम पर दिख जाते काफल के पेड़ पर चढ़कर ढेर सारे काफल तोड़ लाने का और रपटीले ढलानों पर उगे हिसालू की बेहद कँटीली झाड़ियों में घुसकर उसके सुनहरे अमृतफल भी नोच–नोच के अपने साथियों को खिलाते जाने का पुण्य भी कमाते जा रहे हैं।”[16]

निष्कर्ष

डॉ. शाह के उपन्यास का क्षेत्र काफी बड़ा है। उन्होंने प्रत्येक वर्ग विशेष तथा समाज के हर क्षेत्र को छुआ। जैसा कि सामाजिक व्यवस्था पर अनेक भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक एवं आँचलिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। और साहित्य समाज का दर्पण है। इन कारकों का प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है। डॉ. शाह के उपन्यासों में भी समाज के विभिन्न कारकों का पड़ा है। उस समय की सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक तथा आँचलिक व्यवस्था का चित्रण शाह जी के उपन्यासों में मिलता है। साहित्य का सामाजिक दायित्व बोध कोई ऐसी सहज विश्लेष्य स्थूल चीज नहीं है, जिसे उसके कृतित्व से अलग करके बताया जा सके या निर्दिष्ट किया जा सके। जो कुछ समाज रूपी मन में घट रहा है, साहित्यकार को उसकी आहट सबसे पहले मिलती हैः सृजनात्मक ज्ञान तथा ज्ञान के और तमाम अनुशासनों के बीच यह बुनियादी अन्तर है। इस क्रम को उलटने पर दंभ सृजन–प्रक्रिया को झुठलाना और दूषित करना है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. जैन, नेमीचन्द्र ,1979, पृ. 41–47।
2. पंत, पुष्पेश ,1979, पृ. 6।
3. पुनर्वास, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995, पृ. 44।
4. आखिरी दिन, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1992 पृ.17।
5. पुनर्वास, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995, पृ. 14।
6. मेरे साक्षात्कार, किताबघर, दिल्ली, 2004, पृ.. 60–61।
7. पुनर्वास, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995, पृ. 49।
8. कुमाउंनी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति, डॉ. देव सिंह पोखरिया, पृ. 2।
9. विनायक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ.199।
10. मेरे साक्षात्कार, किताबघर, दिल्ली, 2004, पृ. 103।
11. पुनर्वास, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995, पृ. 129।
12. कथा सनातन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012 पृ. 25।
13. विनायक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 41।
14. पुनर्वास, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1995, पृ. 23।
15. आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 2001 पृ. 98।
16. कथा सनातन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 81।